श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 33 — रासलीला

5 October 2026

शरद् की उस अनन्त चाँदनी भरी रात्रि में योगेश्वर प्रभु व्रज की प्रत्येक दो गोपियों के बीच विराजते हैं, और हर एक को लगता है कि वे केवल उसी के पास खड़े हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह तैंतीसवाँ अध्याय स्वयं रासलीला है, जिसे श्री शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को सुनाते हैं — और यहीं राजा वह प्रश्न पूछते हैं जो ऐसी रात्रि किसी भी विचारशील हृदय में उठाती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 33 (त्रयस्त्रिंश अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: रासलीला
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: वृन्दावन में यमुना का बालुकामय तट
- केंद्रीय विषय: व्रज की गोपियों के साथ प्रभु की रासलीला, देवताओं का विस्मय, तथा राजा परीक्षित की धर्म-विषयक शंका का शुकदेवजी द्वारा समाधान
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 1–40
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पूर्व अध्याय का संदर्भ

पूर्व अध्याय में प्रभु विरह से व्याकुल गोपियों के बीच पुनः प्रकट हुए और उनके इस प्रश्न का उत्तर दिया कि कोई प्रेम का प्रत्युत्तर देता है और कोई नहीं। उन्होंने कहा, वे केवल इसलिए छिपे रहे जिससे गोपियों का स्मरण उन्हीं में स्थिर हो जाए।

यमुना-पुलिन पर मण्डल बनता है

शुकदेवजी कहते हैं — प्रभु के उन मधुर वचनों को सुनकर गोपियों ने विरह का वह सन्ताप त्याग दिया जो भीतर जल रहा था, क्योंकि प्रभु की निकटता ने ही उनकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर दी थीं। फिर उसी बालुकामय तट पर प्रभु ने वह लीला आरम्भ की जिसके कारण यह रात्रि युग-युग तक स्मरण की जाती है; गोपियाँ मण्डल में खड़ी हुईं, प्रत्येक की भुजाएँ दोनों ओर की सखियों से जुड़ी हुई थीं।

> तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
> स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

tatrārabhata govindo rāsa-krīḍām anuvrataiḥ strī-ratnair anvitaḥ prītair anyonyābaddha-bāhubhiḥ

अर्थ: वहीं गोविन्द ने उन स्त्री-रत्नों के साथ रासक्रीड़ा आरम्भ की, जो उनमें अनुरक्त और प्रेमपूर्ण थीं और परस्पर एक-दूसरे से भुजाएँ मिलाए खड़ी थीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 2)

प्रत्येक दो के बीच एक प्रभु

गोपियों के उसी मण्डल से सुशोभित होकर रास का महोत्सव आरम्भ हुआ। योगेश्वर कृष्ण उनमें से प्रत्येक दो के बीच विराजमान हो गए; और यह ऐसा आश्चर्य था कि हर गोपी को निश्चय था कि प्रभु केवल उसी के पास खड़े हैं। ऊपर आकाश सैकड़ों विमानों से भर उठा, क्योंकि देवतागण अपनी पत्नियों सहित आ पहुँचे थे, जिनका मन प्रभु के दर्शन की उत्कण्ठा से हर लिया गया था।

आकाश में दुन्दुभे और बालू पर पुष्पवृष्टे

स्वर्ग से दुन्दुभियाँ बज उठीं, पुष्पों की वर्षा होने लगी, और गन्धर्वराज अपनी पत्नियों सहित प्रभु का निर्मल यश गाने लगे। मण्डल के भीतर एक दूसरा ही संगीत उठा — अपने प्रियतम प्रभु के साथ चलती गोपियों के कंगनों, नूपुरों और करधनी की छोटी-छोटी घण्टियों का मिला-जुला स्वर।

रात्रि-आकाश सैकड़ों विमानों से भर उठता है, दुन्दुभियाँ बजती हैं, पुष्पों की वर्षा होती है, और गन्धर्वराज प्रभु का निर्मल यश गाते हैं (श्लोक 3-6)।

स्वर्ण-मणियों के बीच महामरकत

> तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुत: ।
> मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥

tatrātiśuśubhe tābhir bhagavān devakī-sutaḥ madhye maṇīnāṁ haimānāṁ mahā-marakato yathā

अर्थ: वहाँ उनके मध्य देवकीनन्दन भगवान् ऐसे अत्यन्त सुशोभित हुए, जैसे स्वर्ण-मणियों की माला के बीच कोई महान् मरकतमणि जड़ी हो। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 7)

मण्डल का गान

लययुक्त पदन्यास, हाथों की मनोहर गति, मुस्कान और भौंहों की लीला के साथ व्रज की वे देवियाँ प्रभु के चारों ओर ऐसे दमक उठीं जैसे मेघमाला में बिजली की रेखाएँ। वे ऊँचे स्वर में गाने लगीं — प्रेम से मधुर कण्ठ, भक्ति में ही आनन्द, और वह गान इस समस्त ब्रह्माण्ड में भर गया। उनमें से एक ने प्रभु के स्वर से भिन्न अपनी ही तान उठाई, और प्रसन्न होकर प्रभु ने उसकी भरी सभा में प्रशंसा की — “साधु! साधु!” दूसरी ने उसी तान को ध्रुवपद की गम्भीर ताल में उठाया, और प्रभु ने उसका बहुत सम्मान किया।

नृत्य से थकी एक गोपी ने पास खड़े प्रभु के कन्धे पर हाथ टिका दिया; कंगन ढीले पड़ रहे थे और वेणी से मल्लिका-पुष्प गिर रहे थे। दूसरी ने प्रभु की चन्दन-चर्चित भुजा की सुगन्ध ली और उसे श्रद्धा से ग्रहण किया, उसके रोम आनन्द से खड़े हो गए। जिसका मुख झूमते कुण्डल की आभा से दीप्त था, उसे प्रभु ने अपने हाथ का ताम्बूल दिया; और एक अन्य, गाते-गाते थकी हुई, प्रभु के करकमल के शीतल स्पर्श में विश्राम पा गई।

वह रात्रि जो समाप्त ही न हुई

श्री के एकमात्र प्रियतम प्रभु को अपना बनाकर वे गान करती रहीं और उनके साथ नृत्य करती रहीं; कंगन, नूपुर और करधनी ही एकमात्र वाद्य थे और गुंजार करते भ्रमर ही गायक। अपनी स्नेहभरी चितवन, कृपापूर्ण ध्यान और मुक्त हास्य से प्रभु ने उन निर्मल हृदया गोपियों को आनन्दित किया — और यहीं शुकदेवजी वह एक वचन जोड़ते हैं जो सारी रात्रि को उसके सच्चे प्रकाश में रखता है: प्रभु उनके साथ ऐसे क्रीड़ा कर रहे थे जैसे कोई शिशु अपने ही प्रतिबिम्बों के साथ खेलता हो। आनन्द से इन्द्रियाँ अभिभूत होने के कारण वे अपने शिथिल केश और वस्त्र पहले की भाँति सँभाल भी न सकीं। देवांगनाएँ देखकर मोहित हो गईं; और चन्द्रमा अपने समस्त नक्षत्र-परिवार सहित विस्मित होकर ठहर गया, जिससे वह रात्रि अपनी मर्यादा से कहीं आगे तक खिंच गई।

वृन्दावन के ऊपर चन्द्रमा और उनका नक्षत्र-परिवार विस्मय में ठहर जाते हैं, और वह रात्रि अपनी स्वाभाविक मर्यादा से कहीं आगे तक खिंच जाती है (श्लोक 19)।

जितनी भक्त, उतने रूप

> कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषित: ।
> रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥

kṛtvā tāvantam ātmānaṁ yāvatīr gopa-yoṣitaḥ reme sa bhagavāṁs tābhir ātmārāmo ‘pi līlayā

अर्थ: जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् ने उनके साथ वह समय बिताया — यद्यपि वे अपने ही स्वरूप में रमण करने वाले हैं, तथापि अपनी लीला से ऐसा किया। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 20)

जिन्हें किसी से कुछ अपेक्षित नहीं, वे अपने भक्तों की थकान के आगे झुक गए: करुणामय प्रभु ने अपने परम सुखद हाथ से उन गोपियों के मुख पोंछे, जो देर तक नृत्य से थक चुकी थीं। अपने कपोलों की आभा और मुस्कान के अमृत से उनका सम्मान करती हुई वे उन कर्मों का गान करने लगीं जो संसार को पवित्र कर देते हैं।

यमुना-जल के समीप

अन्ततः श्रमित होकर, मुरझाई और कुंकुम-रँगी माला लिए, प्रभु थकान मिटाने यमुना के जल में उतरे, और गन्धर्व-नायकों की भाँति गुंजार करते भ्रमर उनके पीछे चले। वहाँ उन तरुणियों ने हँसते हुए और स्नेह से निहारते हुए चारों ओर से उन पर जल छिड़का, जबकि विमानों में बैठे देवता पुष्पवृष्टि करते हुए स्तुति करते रहे; और प्रभु उनके बीच गजराज की भाँति विहार करते रहे, यद्यपि उनका आनन्द अपने ही में है। तदनन्तर वे नदी-तट के एक उपवन में विचरण करते रहे, जहाँ वायु जल और थल के पुष्पों की सुगन्ध लिए बहती थी। इस प्रकार उन्होंने वे रात्रियाँ बिताईं, जो पूर्ण चन्द्रमा से उज्ज्वल थीं और शरद् की वह सारी शोभा धारण किए थीं जिसका वर्णन कवियों ने किया है।

दीर्घ रात्रि की थकान मिटाने प्रभु यमुना के जल में उतरते हैं, और ऊपर से देवगण पुष्पवृष्टि करते हुए उनकी स्तुति करते हैं (श्लोक 23-24)।

राजा परीक्षित का प्रश्न

यहाँ राजा ने अपनी शंका स्पष्ट रूप से रखी। उन्होंने कहा कि जगदीश्वर अपने अंश बलराम सहित धर्म की स्थापना और अधर्म के शमन के लिए ही अवतरित हुए थे। फिर जो स्वयं धर्म की मर्यादाओं के वक्ता, कर्ता और रक्षक हैं, वे परायी स्त्रियों के समीप जाकर उन्हीं मर्यादाओं के विपरीत आचरण कैसे कर सकते हैं? जिनकी कोई कामना शेष नहीं, उन यदुपति ने किस अभिप्राय से ऐसा कार्य किया जिसे संसार निन्दनीय कहेगा? “हे सुव्रत, हमारा यह संशय काट दीजिए”।

शुकदेवजी का उत्तर

शुकदेवजी ने प्रश्न का सीधा सामना किया और एक व्यापक सिद्धान्त से आरम्भ किया।

> धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
> तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥

dharma-vyatikramo dṛṣṭa īśvarāṇāṁ ca sāhasam tejīyasāṁ na doṣāya vahneḥ sarva-bhujo yathā

अर्थ: समर्थ पुरुषों में धर्म का अतिक्रमण और साहस कभी-कभी देखा जाता है; अत्यन्त तेजस्वी जनों के लिए वह दोष नहीं बनता, जैसे सब कुछ भस्म कर देने पर भी अग्नि निर्दोष रहती है। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 30)

इसके तुरन्त बाद उन्होंने वह द्वार बन्द कर दिया जिसे कोई असावधान श्रोता खोलना चाहे। जो स्वयं ऐसी सामर्थ्य का स्वामी नहीं, वह मन से भी कभी ऐसा न करे; जो मूढ़तावश ऐसा करता है वह नष्ट हो जाता है, जैसे रुद्र के अतिरिक्त कोई भी समुद्र-मन्थन से निकला विष पीकर नष्ट हो जाएगा।

> ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
> तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत् ॥ ३२ ॥

īśvarāṇāṁ vacaḥ satyaṁ tathaivācaritaṁ kvacit teṣāṁ yat sva-vaco-yuktaṁ buddhimāṁs tat samācaret

अर्थ: समर्थ पुरुषों का वचन सत्य होता है; उनका आचरण कहीं-कहीं ही अनुकरणीय है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति उनके आचरण का केवल वही अंश अपनाए जो उनके अपने उपदेश के अनुकूल हो। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 32)

अहंकाररहित जनों को सत्कर्म से कुछ प्राप्त नहीं होता और उसके विपरीत से कोई हानि नहीं। फिर पशु, मनुष्य और देवता — सब प्राणियों के नियन्ता को कौन-सा पुण्य या पाप बाँध सकता है, जब वे सभी उन्हीं के अधीन हैं? जो उनके चरणकमलों की रज से तृप्त हैं, जिनके कर्मबन्धन योग से छूटे हैं, और जो परमतत्त्व में लीन हैं — वे भी स्वच्छन्द विचरते हैं, कभी बँधते नहीं; फिर जिन्होंने अपनी ही इच्छा से शरीर धारण किया, उनके लिए बन्धन कहाँ?

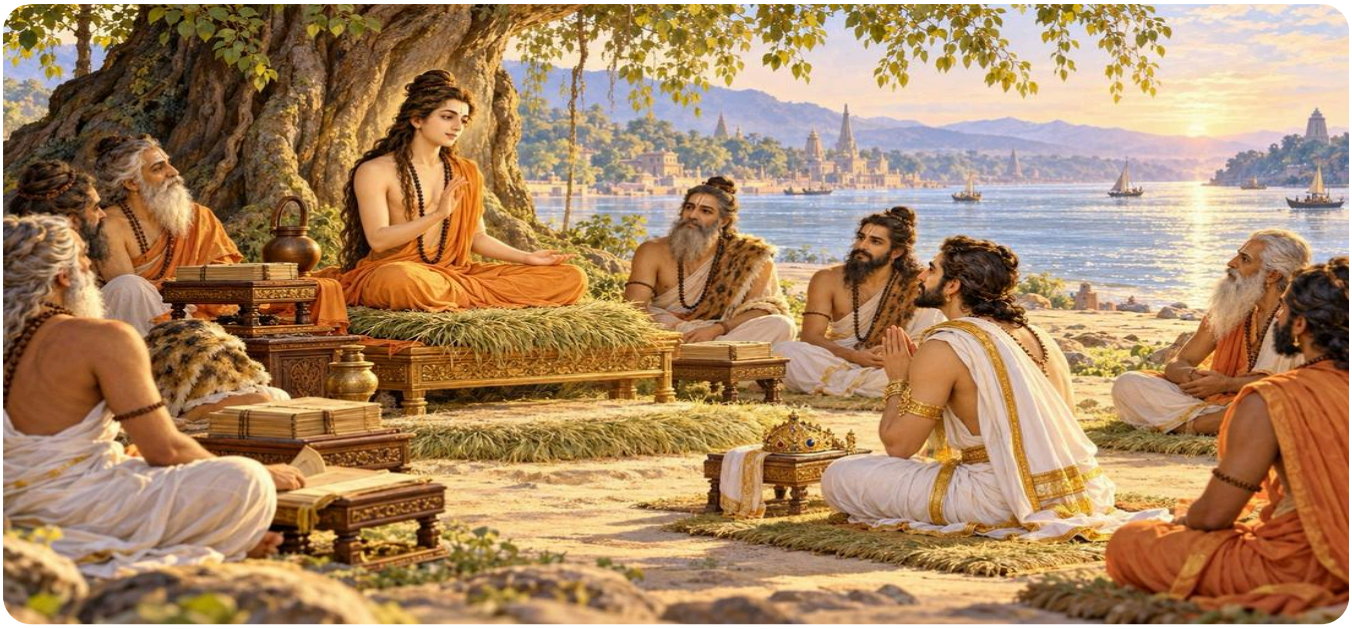

राजा परीक्षित पूछते हैं कि धर्म के रक्षक उसी की मर्यादा के विपरीत कैसे चल सकते हैं, और श्री शुकदेव गोस्वामी सुनते हुए ऋषियों के समक्ष स्पष्ट उत्तर देते हैं (श्लोक 27-32)।

सबके भीतर विराजमान प्रभु

जो गोपियों के भीतर, उनके पतियों के भीतर और प्रत्येक देहधारी के भीतर साक्षी रूप से विचरते हैं, उन्होंने ही लीलावश इस जगत् में शरीर धारण किया।

> अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थित: ।
> भजते तादृशी: क्रीडा या: श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥

anugrahāya bhūtānāṁ mānuṣaṁ deham āsthitaḥ bhajate tādṛśīḥ krīḍā yāḥ śrutvā tat-paro bhavet

अर्थ: समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिए मनुष्य-शरीर धारण करके वे ऐसी ही लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर मनुष्य उन्हीं के परायण हो जाता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 37)

इन्हीं दो श्लोकों पर सारा उत्तर टिका है। यह रात्रि गृहस्थ-धर्म के तराजू पर नहीं तौली जा सकती, क्योंकि उस मण्डल में खड़े वही एक हैं जो वहाँ की हर गोपी के और व्रज के हर पति के अन्तर्यामी आत्मा हैं; ऐसा कोई दूसरा है ही नहीं जिसका वे अहित कर सकें, और उनमें तृप्त करने योग्य कोई कामना है ही नहीं, क्योंकि यही कथा उन्हें क्रीड़ा करते हुए भी आत्माराम कहती है (श्लोक 20)। तब वे क्रीड़ा करते ही क्यों हैं? समस्त प्राणियों पर अनुग्रह के लिए, शुकदेवजी कहते हैं — जिससे जो इन लीलाओं को सुनें वे सम्पूर्ण हृदय से उन्हीं की ओर मुड़ जाएँ। रास श्रोता के लिए है, और उसका नियत फल छूट नहीं, शुद्धि है।

प्रभात में लौटना

प्रभु की माया से मोहित होकर व्रज के पुरुषों ने कृष्ण से कोई ईर्ष्या नहीं की, क्योंकि प्रत्येक यही मानता रहा कि उसकी अपनी पत्नी सारी रात उसी के पास थी। और जब ब्रह्मा की वह दीर्घ रात्रि समाप्ति की ओर बढ़ी, तब प्रभु की वे अत्यन्त प्रिय गोपियाँ उनकी अनुमति लेकर अपने घरों को लौट गईं, यद्यपि लौटना उन्हें रुचिकर न था।

ब्रह्मा की दीर्घ रात्रि समाप्त होने पर प्रभु की अत्यन्त प्रिय गोपियाँ उनकी अनुमति लेकर अपने घरों को लौटती हैं, यद्यपि लौटना उन्हें रुचिकर नहीं (श्लोक 39)।

श्रवण का फल

शुकदेवजी अन्त में नर्तकों पर नहीं, श्रोता पर आकर ठहरते हैं।

> विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
> भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥

vikrīḍitaṁ vraja-vadhūbhir idaṁ ca viṣṇoḥ śraddhānvito ‘nuśṛṇuyād atha varṇayed yaḥ bhaktiṁ parāṁ bhagavati pratilabhya kāmaṁ hṛd-rogam āśv apahinoty acireṇa dhīraḥ

अर्थ: जो श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णु की व्रजवधुओं के साथ की गई इस लीला को सुनता या सुनाता है, वह भगवान् में परा भक्ति पाकर धीर हो जाता है और हृदय के रोग काम को शीघ्र ही त्याग देता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 33, श्लोक 40)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रेम करने वालों में प्रभु कभी बँटते नहीं। जितने भक्त, उतने ही वे हो जाते हैं (श्लोक 20)। जो सम्पूर्ण हृदय देता है, उसे उनके ध्यान का अंश नहीं, पूरा ध्यान मिलता है।

2. जो भी अर्पित हो, वह स्वीकार और सम्मानित होता है। अपनी ही तान उठाती एक अकेली वाणी प्रभु की खुली प्रशंसा खींच लेती है। वे अर्पण में निपुणता नहीं, प्रेम तौलते हैं।

3. महापुरुषों का उपदेश बाध्यकारी है, उनका आचरण छूट नहीं। जो समर्थों में क्षम्य है वही निर्बल को नष्ट कर देता है, और बुद्धिमान् केवल उसी का अनुकरण करता है जो वे स्वयं सिखाते हैं। प्रशंसा कभी अनुमति नहीं होती।

4. प्रभु को कुछ नहीं बाँध सकता, क्योंकि उनसे बाहर कुछ है ही नहीं। वे हर प्राणी में साक्षी रूप से विराजते हैं और उनका शरीर भी इच्छामात्र से धारण किया हुआ है। पुण्य और अतिक्रमण शासितों की श्रेणियाँ हैं, शासक की नहीं।

5. इस लीला का श्रवण हृदय का रोग मिटा देता है। श्रद्धा से सुनने का नियत परिणाम है परा भक्ति और काम से मुक्ति (श्लोक 40)।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस रात्रि में जो कुछ घटता है, उसमें भक्त के मन में जो ठहर जाता है वह चाँदनी या संगीत नहीं, एक शान्त चेष्टा है: प्रभु अपने लिए नाचने वालों के थके मुख अपने हाथ से पोंछ रहे हैं। उन्होंने उनके लिए स्वयं को अनेक किया, हर एक के पास ऐसे खड़े रहे मानो सृष्टि में वही एक जीव हो, और फिर उनकी थकान का भी स्वयं ध्यान रखा। जो हृदय कुछ भी छिपाकर नहीं रखता, उसके साथ प्रभु ऐसा ही व्यवहार करते हैं। और देखिए शुकदेवजी अन्त में उँगली कहाँ रखते हैं। वे हमें मण्डल निहारते छोड़ते नहीं; वे श्रोता की ओर मुड़कर वचन देते हैं कि जो यह कथा श्रद्धा से सुनेगा उसका कामज्वर मिट जाएगा — प्रेम की कथा के विषय में यह कहना चौंकाने वाला है। फिर भी यही ठीक है, क्योंकि वासना डाँटने से नहीं मरती, तब मरती है जब उसका स्थान कोई अधिक मधुर वस्तु ले लेती है। गोपियों ने अपने हृदय प्रभु के अतिरिक्त सबसे रिक्त कर दिए थे, और प्रभु ने वह रिक्तता भर दी।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रभु को कोई ऐसी वस्तु अर्पित कीजिए जिसे आप भलीभाँति नहीं कर पाते — धीरे से गाई भजन की एक पंक्ति, अपने शब्दों की एक सरल प्रार्थना, घर में की गई कोई छोटी सेवा — और उसकी लघुता के लिए क्षमा माँगे बिना अर्पित कीजिए। उस गोपी को स्मरण कीजिए जिसकी अकेली तान ने प्रभु की प्रसन्न प्रशंसा पाई, और विश्वास रखिए कि वे निपुणता नहीं, प्रेम ग्रहण करते हैं। आरम्भ और अन्त पवित्र नाम से कीजिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय रासलीला को उसके अपने शब्दों में रखता है, और फिर राजा परीक्षित के निष्कपट प्रश्न द्वारा उसे स्थिर अर्थ देता है: सब प्राणियों का आत्मा किसी से नहीं बँधता, उनका आचरण हमारे लिए छूट नहीं, और वे ऐसी लीलाएँ प्राणियों को अपनी ओर खींचने के लिए करते हैं। हम इस पवित्र कथा को उसी श्रद्धा से सुनें जिसकी शुकदेवजी अपेक्षा करते हैं, और यह श्रवण हममें वही सिद्ध करे जिसका वे वचन देते हैं — कामना की शान्त मृत्यु और प्रेम का जन्म।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), त्रयस्त्रिंश अध्याय।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-33-the-rasa-dance-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट